International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(1): 75-77

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(1): 75-77
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 17-11-2016
Accepted: 18-12-2016

डॉ. ज्वाला प्रसाद
सहायक कुलसचिव, संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली

Correspondence
डॉ. ज्वाला प्रसाद
सहायक कुलसचिव, संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली

राधावल्लभ त्रिपाठी रचित लघुकथा "वायवाः" की समीक्षा

डॉ. ज्वाला प्रसाद

इस लघुकथा संग्रह 'स्मितरेखा' की तीसरी कथा- वायवा: है। इस लघुकथा में किसी पीएच.डी. उपाधि की वाक् परीक्षा के दृश्य को राधावल्लभ त्रिपाठी ने प्रदर्शित किया है। इसमें विनयशङ्कर जैसे चरित्रों पर कभी क्रोध तो कभी तरस भी आता है। पक्षान्तर में जाहिर है कि निर्मला जैसे चरित्र सहानुभूति के साथ-साथ साधुवाद के भी पात्र हैं जिन्होंने किसी शिक्षामाफिया का साहस के साथ सामना किया। इस संग्रह में शिक्षाजगत् के उच्चतम संस्थानों में समाविष्ट क्षुद्रता मन को क्षुब्ध करती है। कभी-कभी तो लगने लगता है कि यहाँ अच्छे लोगों का गुजारा कैसे हो पायेगा?

वर्तमान में दूषित हो चुके साहित्यिक परिवेश और परिस्थितियों से सम्बद्ध मार्मिक युगबोध यहाँ पाठक के मर्म को अनायास ही स्पर्श करता है। शैक्षणिक गतिविधियों में विशेषत: संस्कारदायिनी संस्कृतभाषा के सन्दर्भ में परिव्याप्त ऐसी स्थितियाँ एक छात्र के लिए जहाँ भयावह है वहीं एक विद्वान् के लिए चिन्तनीय भी है।

विश्वविद्यालयीय शोध प्रणाली की वास्तविकता पर यह कथा गहरी चोट करती है। लेखक विश्वविद्यालय के शिक्षा जगत् से जुड़ा है इस कारण सभी परिस्थितियों से वह सुपरिचित है। अत: वह कथा के कथ्य को पाठक तक सम्प्रेषित करने में सफल रहा है।

कथानक

यह कथा किसी विश्वविद्यालय में किसी छात्रा की पीएच्.डी. की मौखिक-परीक्षा (वायवा) के लिए जा रहे एक आचार्य की यात्रा से प्रारम्भ होती है। अनेक विषयों में सोचते हुए उसकी यात्रा समाप्त होती है तो वह रेलवे-स्टेशन के बाहर निकलता है। वहाँ उसे विनयशङ्कर (जो कि मौखिक-परीक्षार्थिनी निर्मला के निर्देशक है) या उसका कोई सहयोगी नहीं दिखाई देता तभी एक युवक आता है और उनका नाम लेकर उन्हें पूछता है और यह पूछता है कि आप अमुक नगर से आये हैं क्या? प्रोफेसर के हाँ कहने पर वह युवक उनका सामान खुद ले लेता है और उनकी अगवानी करता है। प्रोफेसर सोचते हैं कि शायद कोई नव-नियुक्त प्राध्यापक होगा, जिससे कि मैं इसे पहचानता नहीं। वह युवक बाहर लाकर कुछ ढूँढ रहा है कि एक कार आकर सामने रुकती है। वह युवक पीछे का दरवाजा खोलकर प्रोफेसर को उसमें बैठने का आग्रह करता है। वह उसमें बैठ जाता है। युवक सामान रखकर आगे की सीट पर बैठ जाता है। बातचीत में पता चलता है, कि युवक का नाम राजेन्द्र है, जो कि शोधकर्त्री निर्मला का पति है, और किसी महाविद्यालय में भौतिक विज्ञान का असिस्टेन्ट प्रोफेसर है। एक बहुत बड़े तोरण को पार कर कार रुकती है तो प्रोफेसर देखते हैं कि यह मेरा सुपरिचित विश्वविद्यालय का अतिथिकक्ष तो नहीं है। युवक कार की खिड़की खोलकर प्रोफेसर से उतरने का आग्रह करता है। तो प्रोफेसर देखता है कि यह तो होटल है। प्रोफेसर मन ही मन सोचता है कि अबकी बार विनयशङ्कर ने बड़ी अच्छी व्यवस्था की है। राजेन्द्र उनको एक कमरे में ले जाता है। वहीं विनयशङ्कर भी आ जाते हैं। विनयशङ्कर (जो नाम के विपरीत अविनयी और अशंकर है) अपने स्वभाव के विपरीत प्रोफेसर का स्वागत करते हैं। जब राजेन्द्र कमरे में आता है तो

विनयशङ्कर उसे कई तरह से डाँटते हैं। वह चुपचाप डाँट सुनकर विश्वविद्यालय में वायवा की व्यवस्था के बहाने से चला जाता है।

विनयशङ्कर कहते हैं कि स्त्रियों को पढ़ाना नहीं चाहिए। उन्हें घर के काम सीखने चाहिए पढ़ना उनके बस की बात नहीं। उन्हें वैसे ही समय नहीं होता उस पर भी विवाह हो जाए तो पति सेवा ही शोध हो जाता है।

अब इस निर्मला को ही देखिए कुछ नहीं पता कहाँ किससे शोध-प्रबन्ध लिखवाया या लिखा। वस्तुतः मैंने एक भी पङ्क्ति इस शोधप्रबन्ध की नहीं पढ़ी। इस राजेन्द्र ने ही इस शोध-प्रबन्ध की चार प्रतियाँ लाकर मेरे सामने रख दी और पाँच लठैत लाकर बोला कि 'इन्हें अग्रसारित करते हो या नहीं' इस प्रकार डराकर बलात् हस्ताक्षर करा लिए। ये सुनकर परीक्षक बहुत अचम्भित हुए।

इतने में राजेन्द्र उन्हें लेने आ गया। आते ही विनयशङ्कर ने उसे डाँटना शुरू कर दिया। परीक्षक विश्वविद्यालय पहुँचे। वहाँ वायवा शुरू हुआ तो शोधकर्त्री ने एक-एक प्रश्न का बहुत विस्तार से, उत्तम रीति से उत्तर दिया। विनयशङ्कर ने रोकना चाहा पर परीक्षक ने कुछ प्रश्न और किए उनके भी परीक्षार्थिनी ने अच्छे उत्तर दिए। विनयशङ्कर के आग्रह पर परीक्षक ने रिपोर्ट बनाई पर रिपोर्ट में लिखा कि बहुत अच्छा शोध है, जो प्रकाशित होने योग्य है। ये पढ़कर विनयशङ्कर को अच्छा नहीं लगा, पर विवश होकर हस्ताक्षर करने पड़े। विनयशङ्कर कुलपति के साथ बैठक का बहाना बनाकर वहाँ से चले गए। उनके जाने के बाद शोधार्थिनी के द्वारा परीक्षक को पता चला कि विनयशङ्कर अपने साले को जहाँ नौकरी दिलाना चाहते थे वहाँ मना करने पर भी निर्मला साक्षात्कार हेतु चली गई थी। तब से ही यह शत्रुता ठान बैठे है। चार साल में भी शोध-प्रबन्ध जमा नहीं कराने दिया। इस कारण ये रास्ता अपनाने को मजबूर हुए।

भाषा-शैली

आचार्य त्रिपाठी की भाषा वैदर्भी रीति को आश्रय करते हुए प्रसाद गुण में अवतरित होती है। यद्यपि प्रोफेसर संस्कृत जगत् के प्रौढ़ विद्वान् हैं फिर भी उनकी भाषा इतनी सहज है कि सामान्य संस्कृत जानने वाला भी उनके कथ्य को सरलतया समझ सकता है। आचार्य त्रिपाठी की पूरी कथा पुस्तक के नाम (स्मितरेखा) के अनुरूप मन्द हास्य में चलती है यहाँ कहीं भी फूहड़ता का लेश मात्र नहीं है।

अलङ्कार

प्राचीन कथाकार एक प्रसंग के लिए अनेक अलङ्कारों का अतिसंख्या में प्रयोग करते थे जिससे कि वर्णन बोझिल होकर उद्वेजनकारी हो जाता था, आचार्य त्रिपाठी की रचनाओं में इसका अभाव है, यहाँ वे एक प्रसंग के वर्णन हेतु एक अलङ्कार का प्रयोग दो या तीन बार करते हैं जिससे कि पाठक मूल रस से उच्छिन्न न होकर उसमें ही डूबता रहता है। जैसे अपने स्वागत को देखकर प्रोफेसर सोचता है- 'अस्यां यात्रायां विनयशङ्करः कथं वी.आइ.पी. व्यवहारेणायं सत्करोतीति विस्मित इव, पुरतः स्फुरता स्थानस्य तस्य वैभवेन विभावित इव, चाकचक्येन चमत्कृत इव, निर्धारित स्वकक्षमहमविशम्।'[1]

आचार्य त्रिपाठी ने शब्दों का प्रयोग इस प्रकार से किया है कि उनके समस्त पदों में अनुप्रास तो अनायास ही बन गया है, जैसे- 'विकल्पकल्पनाकवलितस्वान्तः' [2], 'परिपीतचायपेयां' [3], 'निर्वर्तितस्नानाह्निका।'[4]

उपमा प्रोफेसर की कथा को और मनोहर बना देती है- जैसे- 'इयं कुलवधूर्वतते, किमर्थं शोधपङ्के गौरिव सीदति?'[5] यहाँ पर रूपक और उपमा का संकर अलङ्कार बड़ा उत्तम बन गया है।

रस

प्रस्तुत कथा हास्य रस से ओतप्रोत है। प्रयोजन के बिना मनुष्य कोई काम नहीं करता अतः आचार्य त्रिपाठी कथा में हास्य के साथ-साथ कोई संदेश अवश्य रखते हैं जो कि कान्तासम्मितउपदेश के समान यहाँ विद्यमान है।

सम्प्रेषण

आचार्य त्रिपाठी ने अपने लेखन में कथावस्तु को ऐसे प्रस्तुत किया है कि पाठक तक अनायास ही सम्प्रेषित हो गई है। इसके लिए वे मुहावरेदार भाषा का प्रयोग करते हैं। कहीं-कहीं पुरातन ग्रन्थों की उक्तियों का सुष्ठुप्रयोग करते हैं, वहाँ भी हास्य रस फूट पड़ता है जैसे मेघदूत की उक्ति का प्रयोग- 'करुणेशमिश्रस्य मयि सन्ति केचन उपकाराः। न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय, प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः इति वचः संस्मृत्य ..... विसृष्टम्।' [6] कथाकार विश्वविद्यालय की व्यवस्था पर कटाक्ष करते हुए बताते हैं कि आजकल विश्वविद्यालय पीएच्.डी. उपाधि मुक्तहस्त से वितरित करते हैं।[7] लेखक वायवा परीक्षा के परीक्षक की अवस्था पर कटाक्ष करते हैं कि कोई तो एक बार भी ग्रन्थ को न पढ़कर ही प्रतिवेदन बनाकर दे देता है। परीक्षक शोधकर्त्री का नाम विस्मृत कर गया है। यद्यपि ग्रन्थ उसी के पास है फिर भी एक बार भी देखने का उसका मन नहीं करता। [8] शोध-प्रबन्धों के विषय में भी लेखक व्यङ्ग्य करता है कि आज-कल किसी पुराने प्रबन्ध के नायक नायिकादिभेद अथवा सांस्कृतिक अनुशीलन जैसे घिसे-पिटे विषयों पर पीएच्.डी. करा दी जाती है। [9]

कथाकार निर्मला के अच्छे होने के रहस्य को अन्त तक बनाए रखने में अत्यन्त सफल हुआ है। अन्त में निर्मला द्वारा बताए गए वृत्तान्त से विनयशङ्कर जैसे द्वेषी एवं अपकारी शिक्षक के रूप में घातक व्यक्ति के चरित्र को भी कथा में स्पष्ट किया गया है।

संदर्भ सूची

1. स्मितरेखा, पृ. 22
2. स्मितरेखा, पृ. 31
3. स्मितरेखा, पृ. 31
4. स्मितरेखा, पृ. 31
5. स्मितरेखा, पृ. 38
6. स्मितरेखा, पृ. 29
7. तथैवासावपि विश्वविद्यालयो वितरत्युपाधिमियम्। मुक्तहस्तं वितरतीति वक्तव्यम्। - स्मितरेखा, पृ. 28

8. शोधप्रबन्धस्तु मम परिच्छदे वर्तते। तमुद्घाट्य अवलोकयामि चेत् प्रबन्धकर्त्र्या नाम पुनर्ज्ञातं स्यात्। परन्तु प्रबन्धं सकृत् उद्घाट्यापि द्रष्टुं मनो न मनुते। – स्मितरेखा, पृ. 28
9. नायक– नायिकादिभेदं कस्यचित् पुरातनप्रबन्धस्य सांस्कृतिकमनुशीलनं वेत्येतादृशं यं वा कं वा विषयमवलम्बयासौ शोधकार्यं कारयति। – स्मितरेखा, पृ. 29